# इस्लाम और इंसानी हुक़ूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़्वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः सैय्यद सुफ़यान अहमद नदवी

(18)

इस्लाम का हर हुक्म अक़्ल के मुताबिक़ भी है और अद्ल के हिसाब से भी। इस्लाम में इंसाफ़ और अदालत को बुनियादी हक़ हासिल है। फ़िक़्हे जाफ़री के हिसाब से अद्ल की सिफ़त उसूले दीन में दाख़िल है और तौहीद के बाद दूसरी अस्ल यही अद्ल है। इस्लाम का कोई भी मसला चाहे उसका ताल्लुक़ अक़ीदे से हो या अमल से, बिना अद्ल के सोचा ही नहीं जा सकता। इस से पहले किसी मज़मून में अद्ल की मुख़्तसर तारीफ़ की जा चुकी है, लेकिन कमी की वजह से बात मुकम्मल तौर पर नहीं बयान की जा सकी थी, अद्ल के माने बयान किये गये हैं ''किसी भी चीज़ को उस जगह रखना जो उसके लिए ठीक है'' अगर कोई चीज़ उस जगह पर हो जो उसके लिए ठीक नहीं तो यही ज़ुल्म है इसको कहा गया है ''किसी चीज़ का उसकी मुनासिब जगह के अलावा रखना'' इसकी बहुत सी मिसालें पेश की जा सकती हैं, जैसे टोपी की जगह सर है और मोज़े पैरों के लिए हैं। अगर जगह बदली जाए तो ज़ुल्म हो जाएगा। हर चीज़ उस जगह पर अच्छी लगती है, जो उसके लिए ठीक हो। शायरों ने महबूब की ज़ुल्फ़ों की तारीफ़ में ज़मीन व आसमान एक कर दिये हैं, लेकिन अगर यही शायर साहब खाना खा रहे हों और उस महबूब की ज़ुल्फ़ का एक बाल सालन में निकल आए तो उनकी तबीअत बिगड़ जाएगी, क्योंकि चीज़ को जहाँ होना चाहिए वहाँ नहीं है। अद्ल ही से सही जगह का अन्दाज़ा होता है और सही जगह ही हुस्न की जान है। कितनी ही ख़ूबसूरत नाक क्यों न हो, लेकिन अगर चेहरे से बड़ी या छोटी है तो ख़राब लगेगी। आँखें लाख ख़ूबसूरत हों, लेकिन अगर चेहरे के हिसाब से बड़ी हैं तो वह भयानक लगेंगी। ख़ुद ताज महल की ख़ूबसूरती, जिसको आठ अजूबों में सबसे अच्छा बताया गया है, इसी सही जगह का एहसानमन्द है।

अल्लाह की किताब क़ुरआन मजीद ने अद्ल को कई तरीक़ों से बयान फ़रमाया है, कभी अद्ले तकवीनी की सूरत में तो कभी अद्ले तशरीआी की सूरत में, तो किसी जगह पर अद्ल अख़्लाक़ी और इज्तेमाअी के उनवान से। अद्ल क़ुरआन मजीद में तौहीद के साथ-साथ है। मआद (क़यामत) की बुनियाद है, नबियों के भेजने का मक़सद है, इमामत की वजह है, फ़र्द के मानवी कमाल का पैमाना है और समाज में अम्नो अमान की ज़मानत है। अगर क़ुरआन व सुन्नत को ग़ौर से देखा जाए तो मालूम होगा कि उलूहियत से लेकर नुबुव्वत तक और नुबुव्वत से लेकर इमामत तक और इमामत से लेकर क़यामत तक और उसूल से लेकर फ़ुरूउ तक और इन्फ़ेरादी ज़िन्दगी से लेकर इज्तेमाअी ज़िन्दगी तक और सियासत से लेकर तिजारत तक और दोस्तों से लेकर दुश्मनों से सुलूक तक, ग़रज़ मुसलमानों की ज़िन्दगी का कोई जुज़ ऐसा नहीं जिसका केन्द्र बिन्दु अद्ल व इंसाफ़ न हो।

अद्ल ख़ुदाई ख़ूबियों में से है। क़ुरआन मजीद में

एलान हो रहा है: "बेशक अल्लाह अद्ल और एहसान का हुक्म देता है" (सूरए नह्ल, आयत-90) एक जगह पर इरशाद हुआ: "और तुम्हारे अल्लाह की बात सच्चाई और इंसाफ़ के साथ पूरी हो गई है" (सूरए इनआम, आयत-115) नुबुव्वत की बुनियाद अद्ल है। मतलब: "अल्लाह ने मुझे हुक्म दिया है कि मेरा कोई भी क़दम अद्ल और इंसाफ़ के ख़िलाफ़ न उठे" (सूरए आराफ़, आयत-29) "मुझे हुक्म दिया गया है कि तुम्हारे बीच इंसाफ़ करूँ" (सूरए शूरा, आयत-15) नबियों के भेजने का मक़सद अद्ल को क़ायम करना है: "बेशक हम ने रसूलों को खुली दलीलों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और मीज़ान को नाज़िल किया, ताकि लोग इंसाफ़ के साथ खड़े हों" (सूरए हदीद, आयत-25) ईमान के साथ-साथ अद्ल की सिफ़त ज़रूरी है, इसीलिए एलान हो रहा है: "ऐ ईमान वालो! अद्ल और इंसाफ़ के साथ खड़े हो और अल्लाह के लिए गवाह बनो चाहे अपनी ज़ात या अपने माँ-बाप और रिश्तेदारों के ख़िलाफ़ क्यों न हो" (सूरा निसा, आयत-135) ये एलान करके अल्लाह तआला ने मुसलमानों को फ़र्दी और इज्तेमाओ ज़िन्दगी के हर पहलू में अद्ल और इंसाफ़ करने का पाबन्द बना दिया है। फिर और ज़ोर दे दिया: "न ज़ुल्म करो और न ज़ुल्म बर्दाश्त करो" (सूरए बक़रा, आयत-279)

पूरी काएनात अद्ल ही पर क़ायम है। हदीस शरीफ़ है: "अद्ल ही पर आसमान व ज़मीन टिके हुए हैं" क्योंकि पूरी काएनात में हर चीज़ उस जगह पर है जहाँ उसे होना चाहिए, इस वजह से न आपस में टकराव है और फ़ितना व फ़साद। कई करोड़ कहकशाएं हैं और हर कहकशाँ में अरबों सितारे हैं। खुद सितारे भी हरकत में हैं और कहकशाएं भी, लेकिन एक कहकशाँ दूसरी कहकशाँ के अंदर से गुज़र जाती है, मगर एक सितारा दूसरे सितारे से टकराता नहीं है, जबकि खुद कहकशाएं भी घूम रही हैं और उनके अंदर सारे सितारे भी। मगर टकराव नहीं होता, क्योंकि क़ुदरत ने जिसे जहाँ पर रख दिया है वह वहीं पर है। अगर बाल बराबर भी अपनी जगह से हट जाए तो काएनात का निज़ाम बर्बाद हो जाए। इन सितारों के मुक़ाबले में इंसानों की तादाद बहुत कम है मगर क्योंकि अद्ल व इंसाफ़ से हटे हुए हैं और ख़ुदा की हिदायत के मुताबिक़ अमल नहीं है इसलिए सारी ख़राबी है। बिना अदालत के जब इतनी बड़ी काएनात क़ायम नहीं रह सकती तो फिर ये मुख़्तसर सा इंसानी समाज कैसे खड़ा रह सकता है? अगर इंसानी समाज को टकराव और फ़ितना व फ़साद से बचाना है तो अल्लाह तआला के बताए निज़ाम पर चलना लाज़मी है।

किसी भी मुल्क की मज़बूती के लिए अद्ल बुनियादी हैसियत रखता है, इसीलिए हज़रत अली[अ०] का इरशाद है: "कुफ़्र के साथ हुकूमत बाक़ी रह सकती है मगर ज़ुल्म के साथ हुकूमत बाक़ी नहीं रहती" रसूल[स०] का इरशाद है: "एक घड़ी का इंसाफ़ सत्तर साल की इबादतों से अफ़ज़ल है" (जामिउस्सआदात, जि-2 पेज-223) दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया: "किसी हाकिम या रहबर का इंसाफ़ करने का एक दिन उसकी सौ साल की इबादतों से अफ़ज़ल है। हज़रत अली[अ०] का इरशाद है: "इंसाफ़ में मिल्लत की ज़िन्दगी छुपी है और ज़ुल्म में मौत" इमाम काज़िम[अ०] ने आयते करीमा "ज़मीन मुर्दा होने के बाद ज़िन्दा हो जाती है" की तफ़सीर में फ़रमाया कि इस से मुराद है कि इंसाफ़ और इलाही हुदूद के जारी करने से ज़मीन दोबारा ज़िन्दा हो जाती है।

इंसाफ़ के मौज़ू पर इतनी देर बात इसलिए हुई कि हुक़ूक़ और इंसाफ़ एक साथ जुड़े हुए हैं। हुक़ूक़ उस वक़्त तक अदा नहीं हो सकते, जब तक समाज में इंसाफ़ क़ायम न हो। मशहूर यूनानी फ़लसफ़ी अफ़लातून ने इंसाफ़ की तारीफ़ कुछ इस तरह की है "हर शख़्स उस काम में हाथ डाले कि जिसकी लियाक़त व इस्तेअदाद रखता है।" अफ़लातून के मुताबिक़ अगर कोई तिजारत करने वाला सिपाही बनने की कोशिश करे या एक सिपाही हुकूमत की लगाम अपने हाथों में ले ले तो समाज का इन्तिज़ाम टूट-फूट जाएगा और इंसाफ़ की जगह ज़ुल्म

आ जाएगा। अरस्तू के मुताबिक़ ''अदालत उस फ़ज़ीलत का नाम है जिसकी बुनियाद पर हर हक़ वाले को उसका हक़ मिलना ज़रूरी है'' तफ़सीर अल-मीज़ान के लेखक अल्लामा तबातबाई साहब ने अदालत की तारीफ़ इस तरह फ़रमाई हैः ''ताक़तवर लोगों से हक़ वाले को उसका हक़ दिलाना और हक़ को उस जगह क़रार देना जो उसके लिए ठीक है'' बात का ख़ुलासा ये है कि इंसाफ़ और इंसानी हुक़ूक़ एक दूसरे के बिना मुमकिन नहीं हैं। अगर इंसानी हुक़ूक़ की रिआयत हो रही है तो इसका मतलब है कि इंसाफ़ क़ायम है। इस तरह अगर इंसाफ़ हो रहा है तो ज़रूरी है कि इंसानी हुक़ूक़ की रिआयत हो रही है। तो जिस दीन में इंसाफ़ की इतनी अहमियत हो और ज़ोर दिया जा रहा हो, उस पर ये इल्ज़ाम लगाना कि इंसानी हुक़ूक़ की परवाह नहीं करता, अपने आप में एक ज़ुल्म भी है और इस्लाम न जानने वालों को धोका देना भी है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 29 जुलाई 2011ई०)

**(जारी)**